Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language,
Online ISSN 2348-3083, SJ IMPACT FACTOR 2021: 7.278, www.srjis.com
PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL, OCT-NOV, 2021, VOL-9/48

हिन्दी भाषा की बोलियों का उच्चारण सम्बंधित काठिन्य, अवसर एवं चुनौतियां

Seema Sharma, Ph. D.
Associate Professor, Department of Education, (Meerut, College, Meerut)

Paper Received On: 25 NOV 2021
Peer Reviewed On: 30 NOV 2021
Published On: 1 DEC 2021

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

भाषा के विकास में अनेक व्याघात पहुँचने के कारण भाषाओं के विकास की गति मंद पड़ जाती है। भौगोलिक परिस्थिति के कारण किसी देश में सरलता से वहाँ पहुँच नहीं पाते तो बाह्य प्रभाव नहीं पड़ता। बोलियाँ इसी कारण बहुत कम विकसित हुई हैं। समाज में बोली का प्रयोग होता है। अशुद्ध प्रयोग पर लोग हँसते हैं। समाज की हँसी के भय से लोग प्रचलित शुद्ध भाषा का प्रयोग करते हैं और नवीन प्रयोग का साहस नहीं करते। आदर्श और शुद्ध प्रयोग के आग्रह के कारण व्याकरण भी बाधा पहुँचाता है। अशिक्षित लोक व्याकरण शुद्ध प्रयोग का साहस नहीं करते। वह एक भाषा विकास में बाधा पहुँचाती हैं क्योंकि वे भय से खुलकर भाषा का प्रयोग नहीं करते हैं। शिक्षा, समाचार, रेडियो, दूरदर्शन, शुद्ध एवं परिलक्षित भाषा का प्रयोग करते हैं, अतएव सभी उन्नतिशील देश का कर्त्तव्य है कि वह अपनी राष्ट्र भाषा की रक्षा अत्यन्त सतर्कता से करें। इस समय हमारे देश की राष्ट्र भाषा हिन्दी है। परन्तु राष्ट्र भाषा का जो सम्मान होना चाहिए वह सम्मान हिन्दी का नहीं है। आज भी राष्ट्र-भाषा को लेकर इसमें अनेक कमियाँ बतायी जाती है। यही कारण है कि हिन्दी की बोलियों की प्रमुख दिक्कतें, अवसर और चुनौतियाँ इस प्रकार हैं।

1. राजनीतिक समस्या

देश के स्वतंत्र होने पर राजनीतिक प्रभाव के कारण तत्कालीन नेताओं ने भी देश का विभाजन भाषा के आधार पर नहीं किया। इसके परिणाम स्वरूप आधार पर भाषा-शक्ति के प्रोत्साहन मिला और अंग्रेजी समुन्नत होती गयी। दूसरे हमारे संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा तो मान लिया गया, किन्तु उसके साथ अंग्रेजी को भी सह राज-भाषा माना गया और इस विषय में यह कहा गया कि अभी हिन्दी शैशवास्था में है इसलिए 15 वर्षों तक उसकी अंगरक्षा माननीय अंग्रेजी भाषा करती रहेगी। इतना ही नहीं

Copyright © 2021, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

14 सितम्बर 1965 को हिन्दी का पन्द्रह वर्षीय दुर्दिन कहा जाता है, परन्तु राजनीतिक दाँव के कारण उसको कष्ट देने के लिए अनावश्यक रूप से अंग्रेजी पुनः उसकी अनिश्चितकालीन सहधर्मिनी बना दी गयी। इस प्रकार राजनीतिक दाँव-पेंच ही राष्ट्रभाषा-हिन्दी तथा उसकी बोलियों की प्रथम समस्या है।

2. निर्धनता की समस्या

हिन्दी के विरोधियों का कहना है कि इसमें विचारों के अभिव्यक्ति की क्षमता नहीं है। इस प्रकार यह एक दरिद्र भाषा है। अतः हिन्दी और उसकी बोलियों के लिए विकासात्मक अवधारणा नहीं हो सकती।

3. उत्तम साहित्य का अभाव

हिन्दी की प्रमुख और गौण बोलियों में आज भी पर्याप्त साहित्य, व्याकरण, शब्दकोशों का अभाव है। हिन्दी और उसकी बोलियों का साहित्य बहुत ही निर्धन है। इससे अच्छा तो संस्कृत साहित्य है। अतः बोलियों में पूर्ण समग्रता का अभाव दिखाई देता है।

4. राष्ट्रीयता का खतरा

हिन्दी के विरोधियों का कहना है कि हिन्दी के विकास में उसकी बोलियाँ ही बाधक हैं। वे उसके राष्ट्रीय भाषा बनने में भी रोड़े अटकाती हैं। भारत में किसी न किसी प्रदेश में बोली या भाषा का विवाद चलता ही रहता है।

5. पारिभाषिक शब्दों की समस्या

बोलियों में नित पारिभाषिक शब्दों का पूर्ण अभाव है। बोलियां किसी को भी एक रूपता प्रदान करने में समक्ष नहीं हो पा रही है। इस दृष्टि में से प्रावैधिक और वैचारिक शब्दकोशों का अभाव है।

6. अनुवाद की समस्या

बोलियों में वर्णित लोक साहित्य का अभी तक हिन्दी या अन्य भाषाओं में पूर्ण अनुवाद नहीं हुआ है। ऊपर इस प्रकार से अनुवाद किया भी जाता है तो वह कठिन हो जाता है। हिन्दी में लोक साहित्य और लोकसाहित्य से हिन्दी में अनुवाद करना एक जटिल प्रक्रिया भी है। अतः बोलियों के सन्दर्भ में यह भी एक दिक्कत है।

7. संकुलित दायरे की समस्या

बोलियों का विवेचन एक संकुचित दायरे के अन्तर्गत किया जाता है। कुछ विद्वान तो यहाँ तक कहते हैं कि हिन्दी मात्र एक बोली है और इसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। इससे अधिक धनी बोलियाँ तो ब्रज, अवधी और राजस्थानी है। दूसरी बात यह भी है कि कुछ ऐसी भी बोलियां हैं जिनका प्राचीन और नवीन साहित्य नहीं के बराबर है। अतः वे विकास नहीं कर पा रही है।

Copyright © 2021, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

8. अधिक लाभ की समस्या

बोलियों के आपसी विवाद होने से लाभ की समस्या भी खड़ी हो जाती है। किसी एक भाषा या बोली को ज्यादा महत्व देने से केवल उसी भाषा/बोली को लाभ होता है। इस दिशा में कुछ भाषा विद्वानों का मानना है कि अहिन्दी भाषा-भाषी पीछे रह जाएंगे।

9. भ्रष्ट लिपि की समस्या

हिन्दी विरोधियों का कहना है कि इसकी लिपि 'अत्यन्त भ्रम और बेढंगी है। इसको सीखने में बहुत कठिनाई होती है। इसकी अपेक्षा रोमन लिपि अत्यन्त सरल है। जो लिपि हिन्दी के लिए प्रयुक्त होती है। वही लिपि हिन्दी बोलियों के लिए प्रयोग में आती है। ऐसे में इन बोलियों के सामने लिपि का भी एक गम्भीर प्रश्न खड़ा हो जाता है।

10. लिंग की समस्या

हिन्दी और उसकी बोलियों में लिंग की एक महत्वपूर्ण समस्या है। हिन्दी में दो लिंग हैं। अतएव इसके लिंग निर्धारक में बड़ी कठिनाई होती है जो लिंग हिन्दी वर्णित होते है। इसी प्रकार उसकी अन्य बोलियों में भी केवल दो लिंग ही मिलते हैं। अतः यहाँ एक तरह से तीसरे लिंग की कमी महसूस की जाती है।

11. वचन की समस्या

हिन्दी और उसकी कुछेक बोलियों में केवल वचन भी दो ही होते हैं। अतएव इसके समक्ष वचन की भी समस्या दिखाई देती है।

12. वर्तनी की समस्या

हिन्दी और उसकी बोलियों में बड़ी अनेक रूपता है। एक उन्नतिशील भाषा या बोली की बर्तनी में एकरूपता होनी चाहिए। अतः इस समस्या का विचारोपरान्त यह कहा जा सकता है कि आज हिन्दी और उसकी बोलियों को अपनी एक रूपता के लिए प्रयास करना आवश्यक है।

13. परसर्ग लेखक की समस्या

हिन्दी और उसकी बोलियों में परसर्गों की भी समस्या है। कुछ आचार्यों का कहना है कि इसके परसर्गों को शब्द से मिला कर लिया जाए या शब्द के अलग लिया जाय। जैसे 'राम को' या 'राज को'। इस दोष के विद्यमान रहते हुए उसकी बोलियाँ विकास नहीं कर पा रही हैं।

मनुष्य का यह सहज स्वभाव होता है कि वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सरलता चाहता है। वह क्षेत्र चाहे साहित्यिक हो या आर्थिक या राजनीतिक। यह सरलता वह बोलते हुए भी चाहता है। यही कारण है कि वह अपने भावों व विचारों की अभिव्यक्ति के लिए जिस माध्यम को अपनाता है, उसमें भी सरलता

Copyright © 2021, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

चाहता है। इस प्रक्रिया में वह शब्दों का भी सरलीकरण करता है। मनुष्य जन्मजात रूप में जिस भाषा को सीखता है, वहीं उसकी बोली होती है। यह बोली या भाषा नदी के प्रवाह की तरह है। जिस प्रकार नदी का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर उन्मुख रहता है। उसी प्रकार भाषा या बोली भी कठिनता से सरलता की ओर उन्मुख होती है। यही कारण है कि भाषा या बोली में परिवर्तन होते हैं, वे भी कठिनता से सरलता की ओर उन्मुख होते हैं।

सरलता की यह प्रवृत्ति अर्थ और ध्वनि में भी दृष्टिगोचर होती है। उदाहरण के लिए ब्रह्म शब्द का परिवर्तन ब्रह्म के रूप में हो गया। इसी प्रकार ब्राह्मण का बाम्हन होता गया। इस प्रक्रिया में बोलियों की सरलता की स्थिति ही विद्यमान मिलती है। इसी प्रकार चट्टोपध्याय का चटर्जी आदि रूप मिलता है। किसी भाषा की बोलियों का निर्धारण करते समय परिवर्तन की इस प्रक्रिया पर ध्यान देना आवश्यक होता है। बोलियों में अतिसरल रूप ग्राह्य होते हैं।1 उसके जटिल रूप भाषा में और नके तत्सम रूप मूल भाषा में मिलते हैं। पारिवारिक आधार पर वर्गीकरण करते समय उस भाषा परिवार के मूल रूप के अध्ययन और बोलियों में उनके सरलीकृत रूप के आधार पर ही यह ज्ञात हो सकता है कि भाषा की कौन-कौन सी बोलियाँ हो सकती है। भाषा वैज्ञानिक सरल भाषा सम्बन्ध के आधार पर इस परिवर्तन को ज्ञात करते हैं तथा व्याकरणिक रूपों के साम्य-वैषम्य के आधार पर सूक्ष्म साम्य को द्योतित करते हैं क्योंकि यह तो निश्चित है कि प्रत्येक बोली किसी भाषा की शाखा मात्र है। यह बोध शब्द समूह और व्याकरणिक रूपों की समानता के होता है।2 अतः भाषा की बोलियों के अध्ययन के लिए शब्द और व्याकरणिक साम्य का अध्ययन विशेष रूप से किया जाता है।

नव्य भाषा विज्ञानियों की दृष्टि शब्द प्रक्रियात्मक अध्ययनों पर अधिक रहती है। उन्होंने स्वतंत्र शब्द के इतिहास में विशेष रुचि ली है। शब्दों का उत्पत्ति स्थान, समय, कारण व दिशा पर विचार करते हुए यह जानने का प्रयास किया है कि उनका प्रयोग पहले किसने किया तथा सर्वप्रथम वे किस सामाजिक वर्ग में प्रयुक्त हुए। वे यह भी जाना चाहते हैं कि क्या पहले कोई शब्द आलंकारिक या तकनीकी या और कुछ तथा उनसे किस शब्द को स्थानापन्न किया, किस शब्द के साथ उसे संघर्ष करना पड़ा व किन शब्दों ने उसके अर्थ और रूप को प्रभावित किया एवं उसका प्रयोग किस वाक्य, कहावत, शब्द या पंक्ति में हुआ। इस प्रकार नव्य व्याकरणों द्वारा उपेक्षित शब्दों के स्वतंत्र इतिहास पर नव्य भाषा विज्ञानियों ने पहली बार गम्भीरा से विचार किया है।

नव्य भाषा विज्ञानी यह मानते हैं कि जिस प्रकार दो व्यक्तियों का समान इतिहास की कल्पना अनुचित है। उनकी धारणा है कि शब्दों में परिवर्तन उपस्थित करने वाले प्रत्येक कारण (यथा ऐतिहासिक, क्षेत्रीय, प्रकार, केन्द्रीय व अन्य) का ज्ञान आवश्यक है।

Copyright © 2021, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

नव्य भाषा विज्ञानिकों ने नव्य वैयाकरणों के ग्राम्य व शिखर भाषा जैसे शब्दों के प्रयोगों को समीचीन करार दिया है। उनके अनुसार भाषा एक संहिता है, उसे टुकड़ों में विभाजित नहीं किया जाना चाहिए।3 नव्यभाषा विज्ञानी इस मत के समर्थक हैं कि ध्वनिकीय परिवर्तनीय शब्दों में ही घटित होते हैं, शब्दों के बाहर नहीं। अतएव यह समझना आवश्यक है कि बोली का शब्द क्या है? उसका प्रयोग किसने किया? वह किस क्षेत्र से आया?

नव्य 'भाषा' विज्ञानी द्वारा प्रस्तुत आयुक्षेत्रानुमान भाषा के अभिलक्षणों की आयु (काल) व उनके विस्तृत क्षेत्र में वितरण पर आधारित है तथा उसकी प्रामाणिकता पुरातात्विक सामग्रों के अध्ययन पर निर्भर करती है। इस प्रकार इसके आधार पर किसी क्षेत्र के भाषाई इतिहास की पुनर्रचना जातीय व पुरातात्विक सामग्री के ताल-मेल से भी हो सकती है। यह प्रकल्पना इस बात पर निर्भर करती है कि जिस प्रकार किसी तालाब में एक पत्थर फेंकने से तरंगें फैल जाती है, उसी प्रकार भाषा के महत्वपूर्ण अभिलक्षणों का प्रासार किसी एक क्षेत्र से नव-प्रवर्तन के माध्यम से होता है। तरंगतंत्र में नवप्रवर्तन किसी भी समय उस भाषा क्षेत्र को घेर सकते हैं, जहाँ से उनका प्रादुर्भाव हुआ है, किन्तु किनारे वाले क्षेत्रों में परिवर्तन की लहर नहीं पहुँच पाती, जिससे वहाँ भाषा के प्राचीन अभिलक्षण मिल सकते हैं।4 नव-प्रदर्शन व पार्श्ववर्ती क्षेत्रों में मिलने वाली भाषिक प्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं, जिनके आधार पर दोनों क्षेत्रों की आयु की कल्पना की जा सकती हैं।

किसी भाषा की बोलियों का निर्धारण उसके व्याकरणिक रूपों की संरचना से भी जुड़ा होता है। यदि किन्हीं दो बोलियों में वाक्य-विन्यास या सम्बन्ध तत्व का निर्माण एक जैसा होता है तो उन्हें एक भाषा की बोली माना जाता है। इस क्रम सम्बन्ध तत्व का विशेष महत्व होता है। मूल शब्द से वाक्य में प्रयुक्त सम्बन्ध तत्व के जोड़ देने के ही अर्थ की प्रतीति होती है। इसे रूप रचना कहते हैं। यदि किन्हीं दो या अधिक बोलियों में यह रचना-प्रक्रिया समान होती है तो ये किसी एक मूल भाषा से जुड़ी होती है। बोलियों में आवृत्ति मूलक और पारिवारिक दोनों प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। रूप प्रक्रिया सामान्यतः शब्दों की रूपमिति तथा व्युत्पादन से सम्बन्ध है। शब्द भूगोल में रूप प्रक्रिया की ये दोनों ही शाखाएं महत्वपूर्ण होती हैं तथा किसी बोली में इनके अन्तर्गत मिलने वाले अनेक व्यतिरेकी तत्व भी दृष्टिगत होते हैं। जब हम इन पर अन्वेषण कार्य प्रारम्भ करते हैं, तो हमें सदा की तरह सन्दर्भ के निश्चित स्थान की आवश्यकता होती है और इस रीति से यह शब्द प्रक्रियात्मक भूगोल से मिलती-जुलती है।

किसी रूप सिद्धि से यह समझा जाता है कि किसी प्रसंग में कार्यकर्ता के अनुसार नियमित परिवर्तन होते हैं। जिन्हें 'एक मेन शब्द' के अनेक विधिरूप प्रक्रियात्मक परिवत्रन कहा जा सकता है, यथा घ्वाड् घ्वड्वा से घवाड़न्.....वन बहुवचन इसी प्रकार घृवड़ऊ, घवड़ने से घवड़घना, घृवड़उने

Copyright © 2021, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

(बहुवचन) तथा हय्, हम्य, है से हयूँ, हमय्, हेमयँ बहुवचन। वास्तव में यह भी कहा जा सकता है कि शब्दों के इन तीन समुच्चयों में हम पृथक-पृथक चौदह शब्दों की रचना करते हैं। यह भी सम्भव है कि एक समुच्चय के विविध सदस्यों में पर प्रत्ययों की विद्यमानता या अविद्य मानता हो, यथा कुत्ता-कुत्ते या इनमें शब्द मध्यम कोई परिवर्तन मिलता हो, यथा मुड़वा-मोड़ना या रूप में आमूलचूल परिवर्तन हो, यथा जा, गन वैसे यदा-कदा रीति से पृथक करने का संदेह बना रहता है।

बोली भूगोल में रूपों के समुच्ययों से हमारा सीधा सम्बन्ध नहीं होता, अपितु हम यह देखते हैं कि एक ही शब्द के प्रकार को बतलाने वाले विविध रूप विविध स्थानों में किस प्रकार मिलते हैं। उदाहरणार्थ है हम इस पर विचार कर सकते हैं कि बघेल खण्ड में अनेक स्थानों पर माली का स्त्रीलिंग मलिनी मिलता है तथा अन्यत्र वह मालिन, मलिनिआ, मालिनिन्, मलिआइन, मालेन मलिनूइत मालिनि है। व्यावहारिक दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि यहां माली के स्त्रीलिंग को बताने के लिए अनेक रीतियां हैं। इस प्रकार की विविध रीतियां (सेठ से स्यठाइन, सेठिन्, सेठियाइन, य्यठानी, सेठांनी, सठिआइन, सठिन्जा, सयठइनिआ, सयठ्इनिआइन) व्यतिरेकी घटना है। इस प्रकार के उदाहरणों में हम 'संदर्भ के निश्चित स्थान' की अपेक्षा जटिल प्रक्रिया से कार्य करते हैं। सर्वप्रथम हम प्रत्येक रूप में समान स्त्रीलिंगवाची प्रकार्य को मानकर चलते हैं, यथा 'मलिनि तथा मालिनमें' ऐसी स्थिति में हमारे संदर्भ में हमारे संदर्भ के निश्चित बिन्दु के अन्तर्गत स्त्रीलिंग का तत्व भी परिणत हो जाता है।

यदि ऐसा ही बेघल खण्डी में प्रत्येक संज्ञा स्थान के अनुसार (त्र नी) या (-इन) स्त्रीलिंगवाची प्रत्यय से युक्त होती हमें दूसरे संदर्भ- बिन्दु की आवश्यकता नहीं होगी। तब हम एक स्थान की संज्ञा के स्त्रीलिंग की तुलना दूसरे स्थान की किसी के स्त्रीलिंग से कर सकते हैं किन्तु प्रायः ऐसा नहीं होता है। विविध क्षेत्रों के अन्तर्गत विशेष शब्दों के व्यापार में हमें अधिकांशतः रूपिमीय युक्तियों की परीक्षा करनी पड़ती हैं। रूपिमीय दृष्टि से एक क्षेत्र के भूतकालिक 'रहा' (त्र था) की तुलना दूसरे क्षेत्र के 'थे' (त्र था) से करना संभव है। इसमें कोई गारण्टी नहीं है कि जिस क्षेत्र में 'रहा' का प्रसंग हो रहा है वहाँ 'ते' प्रयुक्त है वहां 'रहा' भी होगा। ऐसी स्थिति में सामान्य तौर पर किसी उदाहरण में किसी एक शब्द के व्यापार को लेकर विशेष कार्य आरम्भ करना चाहिए। विविध स्थानों में रूप प्रक्रिया की आरम्भिक बातों को जानने के लिए हम 'एकमेव' शब्द को चुनते हैं। तब हमारे पास 'संदर्भ के निश्चित बिन्दु' की वह दूसरी ही स्थिति होती है। वस्तुतः हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विशेष कार्य से हमारा तात्पर्य यह देखना है कि 'एकदेव शब्द' के रूपों के समुच्चय का एक सदस्य पूर्णतया: प्रत्येक समुदाय में समान है। इसे अन्य व्यतिरेकी उदाहरणों के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। यह हम -रहा लें' जैसी

Copyright © 2021, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

व्यतिरेकी घटनाओं' पर विचार कर रहे हैं, तो कभी-कभी यह निर्णय करता कठिन हो जाता है कि क्या वे शब्द प्रक्रियात्मक रूप में हैं या रूप प्रक्रियात्मक रूप में इन पर विचार किया जाना चाहिए।

रूपों का वितरण किसी भी उदाहरण में रूचिकर विषय है। यदि एक ही बोली रूप में सभी स्थितियों में एक रूप व अन्य बोलियों में दूसरे रूप का व्यवहार होता है, तो भ्रांति की सम्भावना नहीं होती। यहां यह ध्यातव्य है कि ऐसे उदाहरणों से हम संदर्भ के उन्हीं स्थानों को लेते हैं, जो एकमेन अर्थ के व्यापक होते हैं। उदाहरणार्थ बघेल खण्ड में याहि 'सहायक क्रिया 'है' के पूर्व कोई प्रश्नावली क्रिया विशेषण युक्त होता है, तो क्षेत्र के अनुसार आय, आही, ही, हएँ, हवै, लागै आदि रूप प्राप्त होते हैं।

रूप सिद्धि से पृथक दूसरे प्रकार की रूप 'प्रक्रियात्मक घटना व्युत्पादन' का परीक्षण करना भी आवश्यक है। इसके अन्तर्गत मिश्र एवं भौतिक शब्दों की रचना का अध्ययन होता है। इसमें उनकी व्याकरणिक लघुता बाची प्रत्ययों की रचना है- जैसे- ऊ (घोड़ऊ) उना (घोड़डना), अउन् (घोड़उन्) एवं (घोड़ेव) वा (घोड़वा) यद्यपि विभक्ति मूलक व व्युत्पादक रचना 'प्रकारों' के मध्य पूर्व भेद नहीं होता, तथापि उनका ज्ञान आवश्यक है। ऐसे प्रसंगों में दो बातें अवधारणीय हैं- (1) किसी क्षेत्र में एक या दूसरे प्रकार के लघुता या गुरूत्तावाची पर प्रत्ययों की अपनी विशेष प्रवृत्ति हो सकती है। (ख) लघुता या गुरूत्तावाची पर प्रत्ययों को जोड़ने के अतिरिक्त तसमान कोई अन्य परम्परा भी हो सकता है। वाक्य विन्यास का विवेचन भाषा- भूगोलवेत्ता के सम्मुख एक कठिन समस्या है। कुछ तो इसलिए कि उसे प्रारम्भ करने के लिए 'सन्दर्भ के निश्चित स्थान' की खोज कठिन है तथा कुछ इसलिए कि किसी विशेष वाक्य विन्यास के सम्बन्ध की घटना को निकाल पाना दुष्कर कार्य है। इस धर्म संकट में अभी तक भाषा भूगोल एक मात्र बोली-भूगोल बनकर रह जाती है।

सारांश

इस प्रकार हिन्दी की बोलियों के सामने अपनी संस्कृति, सभ्यता, रूप विवेचन, व्याकरण आदि को बचाने की भी चुनौतियां सामने आती है। लोक साहित्य ही हिन्दी की बोलियों का विकास करने में समक्षम होता है। अतः यह आवश्यक है कि हिन्दी बोलियों की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उसके लोक साहित्य का विकास किया जाये। लोकभाषा या बोली को राज्य या राष्ट्र के द्वारा मान्यता देने पर अनेक विभागों में नौकरी के अवसर तलाशें जा सकते। अनुवादक की भूमिका भी यहां महत्वपूर्ण हैं। अखबार, प्रेस और मुद्रक को एक व्यापक रोजगार के श्व में हम उे,स यकते हैं। स्कूलों कॉलेजों में मातृभाषा या बोली के अध्ययन से अनेक नये अवसर तलाश किये जा सकते हैं। आधुनिक काल में जो बोलियां और उनके शब्द प्रायः लुप्त हो रहे हैं उनको संग्रहित का कार्य भी किया जाना चाहिए। भाषा या बोली का जो विरोध किया जा रहा है उसे राजनीतिक रूप न देकर व्यापक स्तर पर संस्कृति और

Copyright © 2021, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

सभ्यता के विकासात्मक रूप में बात करनी चाहिए। आज हमें हिन्दी की बोलियों के आन्तरिक और बाह्य दोषों को दूर कर उसकी एकता अखण्डता के संदर्भ में विचार करना चाहिए। अतः आज इन तथ्यों के आधार पर यह सहज ढंग से कहा जा सकता है कि हिन्दी तथा उसकी बोलियों का कलेवर धीरे-धीरे सुव्यवस्थित और वैचारिक रूप से पुनः परिभाषित किया जा रहा है ताकि आने वाली पीढ़ियां उसे ऐतिहासिक सामाजिक और सांस्कृतिक रूप में ग्रहण कर सकें।

संदर्भ

राम किशोर शर्मा, हिन्दी का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ 116
कैलाशनाथ तिवारी, हिन्दी और उसकी विविध बोलियाँ, पृष्ठ 99
वही, पृष्ठ 97
डॉ. केशव दत्त रूबाली, हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ 77

Copyright © 2021, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language